RNI No. -UPHIN/2018/77043
ISSN : 2582-2624
पीयर-रिव्यूड रेफर्ड जर्नल

# भावक

हिंदी साहित्य : सृजन एवं चिंतन के विविध आयामों पर केंद्रित

खंड-7, अंक-4; श्रावण-आश्विन, 2082-83/जुलाई-सितम्बर 2025

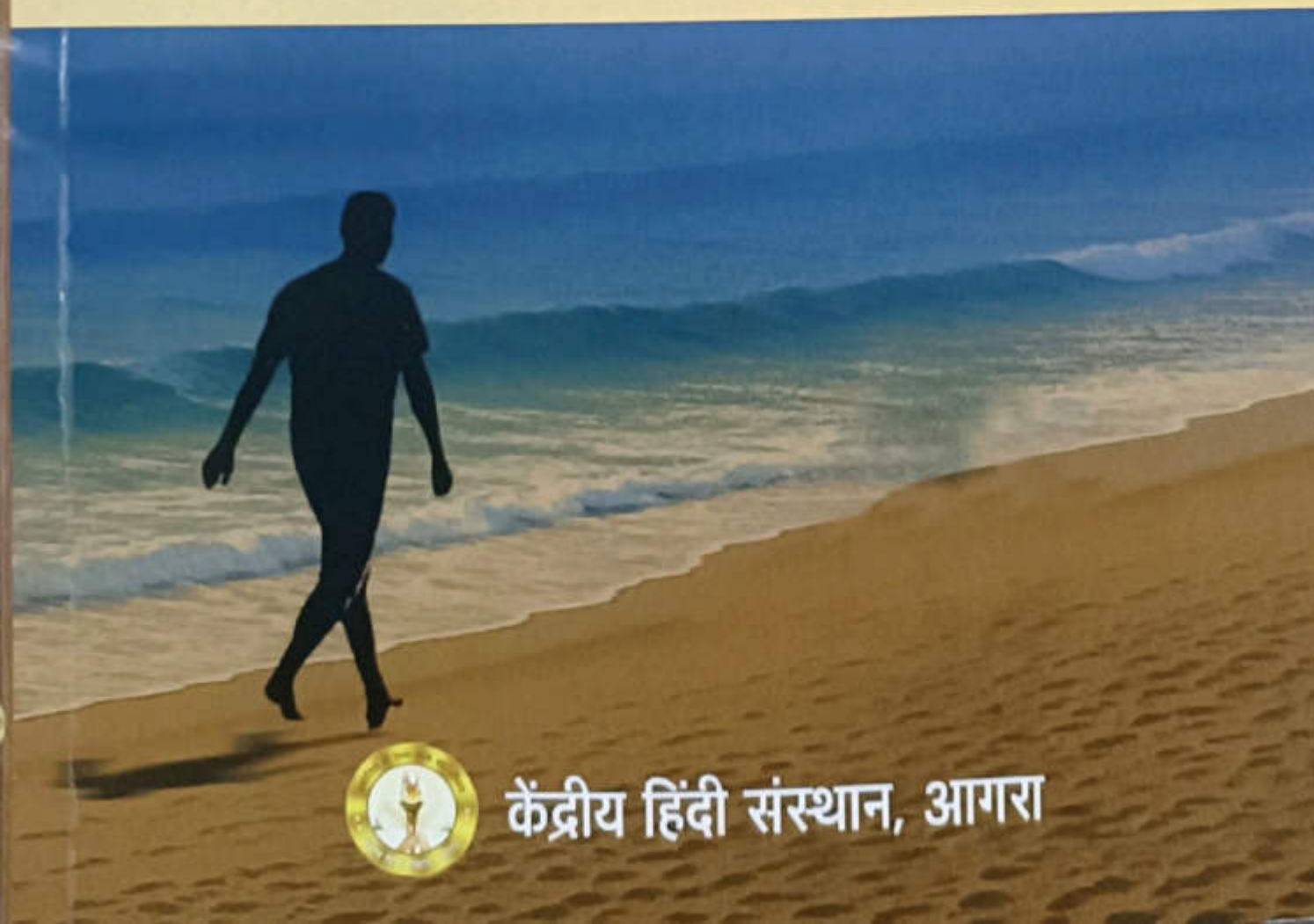

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

# अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| प्रधान संपादक की कलम से..... | प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी | 05–09 |
| संपादकीय | प्रो. सपना गुप्ता | 10–11 |
| भारतीय ज्ञान परंपरा में मिथिला की उपस्थिति | बंदना झा | 12–20 |
| रामदरश मिश्र के काव्य में सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ | योगेश कुमार एवं कमलेश कुमारी | 21–27 |
| भारतीय ज्ञान प्रणाली में जनजाति जीवन दर्शन | अलका यादव | 28–35 |
| प्रेमचंद की कहानियों में नारी चातुर्य | विनय कुमार | 36–48 |
| गुरु परंपरा और भारतीय ज्ञान परंपरा ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टिकोण (हिंदी साहित्य के विशेष संदर्भ में) | शारदा द्विवेदी | 49–56 |
| मिथकों से विज्ञान की ओर बढ़ता समाज | उषा | 57–60 |
| राष्ट्रीयता और पर्वतीय आंचलिकता का जीवंत दस्तावेज : 'मेजर निराला' | अनामिका जैन | 61–68 |
| स्वतंत्रता आंदोलन और महाराष्ट्र की पत्रकारिता | सुनील डहाळे | 69–76 |
| कबीर–काव्य का दार्शनिक द्वंद्व | पीयूष कुमार दुबे | 77–83 |
| गहन अनुभूति के चितेरे कवि : जगन्नाथदास रत्नाकर | नृत्य गोपाल | 84–91 |
| श्रावस्ती का विजयपर्व : एक गौरवशाली विस्मृत कालखंड | ऋचा गुप्ता | 92–100 |

# गुरु परंपरा और भारतीय ज्ञान परंपरा ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टिकोण (हिंदी साहित्य के विशेष संदर्भ में)

–शारदा द्विवेदी

सार

*उन राष्ट्रों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं जो अपनी संस्कृति को नहीं जानते या उन्हें उनका समुचित स्थान नहीं दिलाते। सदियों तक गुलामी और आक्रांताओं की पीड़ा सहते राष्ट्र की अतीत की उपलब्धियां आक्रांताओं द्वारा दबा-छिपा ली जाती हैं। विजेता जाति पराधीन जाति की उपलब्धियों को अपनी उपलब्धियों बनाकर प्रस्तुत करती है। भारत में मुगलों और अंग्रेजों ने यही किया। आर्थिक शोषण के साथ-साथ सांस्कृतिक शोषण भी भरपूर किया गया। शोषण और विध्वंस की पराकाष्ठा भाषिक पराधीनता के रूप में हमारे सामने आई, जब हमारी भाषा छीन कर एक विदेशी-भाषा, अरबी-फारसी और अंग्रेजी में शिक्षा और सरकारी कामकाज किया जाने लगता है। भाषा अपने साथ संस्कृति लेकर आती है। एक विदेशी भाषा हमारी समृद्ध भाषा के सम्मुख हम पर थोप दी जाती है। हम भारतीयों को अपने अतीत की राख में उन चिंगारियों को ढूंढने का नैतिक दायित्व बनता है जिन्होंने हमारे अतीत को प्रकाशित किया। इस शोध पत्र में हम भारतीय ज्ञान परंपरा में हिंदी साहित्य के योगदान को रेखांकित करने का प्रयास करेंगे।*

***बीज शब्द :*** *सहस्त्राविदयों, अपभ्रंश, बहुसांस्कृतिक, आकांताओं, रामोपासक, कृष्ण्येपासक, व्यंजकता।*

भारतीय ज्ञान परंपरा एक ऐसी सांस्कृतिक उपलब्धि है जो हजारों वर्षो से समृद्ध होती आई है। इस परंपरा का मूल आधार गुरु शिष्य संबंध है जो न केवल आध्यात्मिक वरन् सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक विकास का भी माध्यम रहा है। सहस्त्राब्दियों पूर्व, जब लिपियों का विकास अपने आरंभिक दौर में था तो ज्ञान के दाय को

इसी गुरु शिष्य परंपरा ने अपनी वाणी और स्मृतियों में संरक्षित कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया। जहाँ गुरुओं ने अपना संपूर्ण जीवन ज्ञान-विज्ञान के शोध और उनकी शाखाओं-प्रशाखाओं के विकास में लगा दिया, तो योग्य शिष्यों ने उस ज्ञान को आगे आने वाली पीढ़ी को प्रदान कर स्वयं गुरुत्व के दायित्व का निर्वहन किया।

हिंदी साहित्य ने वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से आरंभ होकर हिंदी के विकास तक की तमाम ज्ञान परंपराओं एवं साहित्य के विविध आयामों को युगानुरूप अपने दायित्वों को निभाया है। ''आज से लगभग हजार वर्ष पहले हिंदी साहित्य बनना शुरू हुआ था। इन हजार वर्षों में भारतवर्ष का हिंदी भाषी जन-समुदाय क्या सोच समझ रहा था, इस बात की जानकारी का एकमात्र साधन हिंदी साहित्य ही है। कम-से-कम भारतवर्ष के आधे हिस्से की सहस्र वर्ष-व्यापी आशा-आकांक्षाओं का मूर्तिमान प्रतीक यह हिंदी साहित्य अपने आप में एक ऐसी शक्तिशाली वस्तु है कि इसकी उपेक्षा भारतीय विचारधारा के समझने में घातक सिद्ध होगी। पर नाना कारणों से, सचमुच ही यह उपेक्षा होती चली आई है।''[1] अपनी ऐतिहासिक और दार्शनिक धरोहर को याद करते हुए द्विवेदी जी पुनः लिखते हैं-''आज से दो हज़ार वर्ष पहले से लेकर हजार वर्ष पहले तक के हजार वर्षों में जो ग्रंथ लिखे गए, उनकी प्रमाणिकता में बाद में चलकर कभी कोई संदेह नहीं किया गया और उन्हें ही यथार्थ में हिंदू धर्म का मेरुदंड कह सकते हैं। मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ, सूर्य आदि पाँचो सिद्धांत-ग्रंथ, चरक और सुश्रुत की संहिताएँ, न्यायादि छहों दर्शन सूत्र, प्रसिद्ध पुराण, रामायण और महाभारत के वर्तमान रूप, नाट्यशास्त्र पतंजलि का महाभाष्य आदि कोई भी प्रमाणिक माना जाने वाला ग्रंथ क्यों ना हो, उसकी रचना, संकलन या रूप प्राप्ति सन् ईसवी के दो ढाई सौ वर्ष इधर-उधर की ही है। उसके बाद की चार-पांच शताब्दियों तक इन ग्रंथो के निर्दिष्ट आदर्श का बहुत प्रचार होता रहा और इसी प्रचार काल में संस्कृत साहित्य के अनमोल रत्नों का प्रादुर्भाव हुआ। अश्वघोष, कालिदास, भद्रबाहु, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, कुमारिल, शंकर, दिङ्नाग, ने नागार्जुन आदि बड़े-बड़े आचार्यों ने इन शताब्दियों में उत्पन्न होकर भारतीय विचारधारा को अभिनव समृद्धि से समृद्धि किया।''[2] भारतीय ज्ञान परंपरा की श्रेष्ठ परंपराओं का संरक्षण संवर्धन एवं उससे एक श्रेष्ठ भविष्य की निर्मित करना हमारा दायित्व है। हमारा देश केवल आर्थिक शक्तियों से ही महाशक्ति नहीं बन सकता है, वह अपने ज्ञान की शक्ति से महाशक्ति बनेगा। अतः हमें अपनी भारतीय ज्ञान प्रणाली-ज्ञान परंपरा अपनी विरासत के प्रति अपने विद्यार्थियों में सम्मान की भावना पैदा करना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय परंपरा उन ज्ञानी ऋषियों की परंपरा है जहाँ नचिकेता जैसे शिष्य हैं। हमारी संस्कृति प्रश्न करने की गुंजाइश को प्रेरित करती है। प्रश्न करने से ही ज्ञान के नए रास्ते खुलते हैं। भारतीय धर्म और दर्शन तर्क को प्रश्रय देता है। प्रश्नकुलता, वाद-विवाद और संवाद से ज्ञान के नए क्षितिज खुलते हैं। जो बौद्धिकता के धरातल पर ये साहस देते हैं कि हम ज्ञान के

मापदंड स्थापित किए जिससे विभिन्न देशों से आने वाले विद्यार्थी और शोधार्थी लाभान्वित हुए। इन संस्थाओं ने आर्यभट्ट, चरक, सुश्रुत, वाराह मिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन मैत्रेई, गार्गी जैसे अनेक महान विद्वानों को जन्म दिया। इन विद्वानों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों जैसे-गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, भवन निर्माण, दिशा-ज्ञान, योग, ललित कलाओं, आदि में विशिष्ट योगदान दिया।

भारतीय ज्ञान परंपरा में न केवल विविध भारतीय भाषाओं की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, बल्कि भारत के विविध क्षेत्रों की बोलियों ने भी अपनी व्यंजकता और सहजता से जन-जन तक सांस्कृतिक जागरण का उद्घोष किया। पूर्व मध्यकाल में जबकि इस्लाम का आगमन हो चुका था, पश्चिमोत्तर और मध्य भारत में आक्रांताओं द्वारा हिंदू देवस्थानों को क्षतिग्रस्त किया जा रहा था तो तत्कालीन भक्तों और संत कवियों ने जनमानस को आध्यात्मिक और मानसिक संबल प्रदान किया। भक्त कवियों ने और संतों ने अपने युग का नेतृत्व करते सामान्य जनमानस में यह भावना भर दी कि परमात्मा का वास हमारे हृदय में है। नाम स्मरण करते हुए तथा अपने सांसारिक कर्तव्यों को करना ही इश्वरोपासना का लक्षण बताया। उन्होंने तमाम वाह्य आडंबरों और कुरीतियों का विरोध किया। संत रविदास के शब्दों में 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' उनके कर्तव्य भावना और कर्तव्य निष्ठा के द्योतक हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय गुरु शिष्य परंपरा चरित्र निर्माण पर बल देती है क्योंकि एक श्रेष्ठ चरित्र ही श्रेष्ठ समाज और स्वस्थ समाज का विकास करेगा। जहाँ सबके लिए समान अवसर होगा। आचार्यों और संतों ने गुरु-महिमा, नाम-स्मरण, प्राणी-मात्र के साथ सहृदयता। गुरु परंपरा में चरित्र और आचरण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया। ''काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर यदि जनता को भक्ति की ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार सूर की कृष्णभक्ति और तुलसीदास की रामभक्ति आंख मूँदकर ग्रहण कर लेते? जिस समय कबीर उत्पन्न हुए थे वह समय ही भक्ति की लहर का था।''[4] हिंदी साहित्य में गुरु को बहुत ऊँचा दर्जा दिया गया है। गुरु न केवल शिष्य को लौकिक विकास के लिए दीक्षित करता है, प्रेरित करता है वरन उसका आध्यात्मिक विकास भी करता है। भारतीय संस्कृति गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा दर्जा देती है। अर्थात् हमारे वेदों में, हमारे पुराणों में गुरु को ब्रह्म के समतुल्य माना गया है। संत कबीरदास का व्यक्तित्व भी गुरु परंपरा से निर्मित हुआ है। कबीरदास जी गुरु के प्रति आदर और विनम्रता 'गुरुदेव का अंग' नाम से साखी में संग्रहीत हैं। गुरु के प्रति अपना भावनाओं को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

''सतगुरु सवा न को सगा, सोधी सई न दाति।
हरि जु सवा न को हितू
हरिजन सई न जाति।।
बलिहारी गुरु आपने दो हांडी कै बार।
जिन मानुष ते देवता करत न लागी बार ।।
सतगुरु की महिमा अनंत,
अनंत किया उपकार ।
लोचन अनंत उघाड़िया,
अनंत दिखावणहार।।''[5]

यहाँ कबीर दास जी गुरु को सर्वाधिक सच्चा और हितैषी मानते हैं, जिन्होंने शिष्य को श्रेष्ठ पथ का पथिक बनाया और वह गुरु ही है जो शिष्य को मनुष्य से देवत्व के मार्ग पर अग्रसर करता है। हिंदी साहित्य के कवियों में हम जातीय गौरव, भाषायी और सांस्कृतिक स्वाभिमान की आभा देखते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, ''कबीर की यह घर फूंक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और निर्मम अक्खड़ता उनके अखंड आत्मविश्वास का परिणाम थी। उन्होंने कभी अपने ज्ञान को, अपने गुरु को अपनी साधना को संदेह की नजरों से नहीं देखा। अपने प्रति उनका विश्वास कभी भी डिगा नहीं। कभी गलती महसूस हुई तो उन्होंने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा, इस गलती के कारण वह स्वयं हो सकते हैं। उनके मत में गलती बराबर प्रक्रिया में होती थी, मार्ग में होती थी ,साधन में होती थी। वे वीर साधक थे और वीरता अखंड आत्मविश्वास को आश्रय करके ही पनपती है।''[6]

आज भारतीय ज्ञान परंपरा को सही अर्थों में अपनी स्वाभाविक गति देने के लिए आवश्यक है कि हम ये जानें कि कैसे आज उसकी विकासशील पृष्ठभूमि हम बना सकते हैं। हम आज के दौर के अनुकूल और प्रासंगिक अपने पूर्वजों की श्रेष्ठ परंपरा और विरासत को आगे बढ़ाएँ क्योंकि हमारे मनीषियों ने अपने पूर्वजों के प्रदेय का आदर पूर्वक विस्तार किया। तुलसीदास जी रामचरितमानस के आरंभ में अपने पूर्ववर्ती परंपराओं और आदर्शों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

**''नाना पुराण निगमागम सम्मतम यद रामायण निगदितम क्वचिदन्यतोअपि।**
**तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।।**

और साधना का माध्यम माना वहीं सूफी साधना के प्रभाव से गुरु को पीर के रूप में भी देखा गया। संतों के यहाँ दोनों का समन्वय है। गुरु नानक की शिष्य परंपरा तो गुरु ग्रंथ साहिब को ही अपना गुरु मानती है, जिसमें गुरुओं की बानियाँ संग्रहीत हैं। यह बानियाँ आज भी हिंदुओं के एक प्रमुख संप्रदाय सिख संप्रदाय का मार्गदर्शन कर रही हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में न केवल सिख गुरुओं की बानियाँ संग्रहीत हैं, बल्कि संतों की बानियाँ भी संग्रहित हैं। यह बानियाँ समाज को दिशा प्रदान करती रही हैं। भक्ति काल में गुरु परंपरा में लोक प्रचलित बोलियाँ में गुरु की वंदना की गई है, देशज भाषा में गुरु की महिमा का बखान है, भक्त कवियों ने गुरु के माध्यम से आत्मिक अनुभव को प्रधानता दी उन्होंने गुरु को साक्षात् ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। गुरु परंपरा ने सामाजिक समरसता स्थापित की। जाति और आर्थिक भेदभाव से ऊपर व्यक्तित्व को प्रधानता दी गई। अधिकांश संत और भक्त कवि आर्थिक और सामाजिक रूप से निचले पायदान से आकर नेतृत्व करते हैं। आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में जातीय चेतना को जागृत करने का कार्य ये आकाशधर्मा गुरु करते हैं। स्वाधीनता आंदोलन की भाषा हिंदी है। पूरा देश इसी भाषा में अंग्रेजी सत्ता के प्रति विद्रोह का बिगुल बजाता है, जिसका आरंभ हिंदी क्षेत्र में सन् 1857 से आरंभ होता है। हिंदी की जातीय चेतना ने मैथिलीशरण गुप्त जैसा ओजस्वी कवि हमें प्रदान किया। भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण गाथा, सर्वश्रेष्ठ जीवनमूल्यों, प्रासंगिक और महत्वपूर्ण परंपराओं को अपने नाटकों के माध्यम से पुनर्जीवित किया युग की आवश्यकताओं के अनुरूप जयशंकर प्रसाद जी ने, महादेवी वर्मा ,सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, दिनकर जैसे कवियों की स्वाधीन चेतना ने जन-जन में स्वाधीनता और आत्म गौरव के प्राण फूँक दिए। यह भारत भूमि सदैव उन गुरुओं, संतों, साहित्यकारों, इतिहासकारों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की सदैव ऋणी रहेगी। हमें अपनी परंपराओं के उन्नत मूल्यों को आगे बढ़ना है। अपने दायित्व का निर्धारण करके उस परंपरा में सर्वश्रेष्ठ जोड़ना है।

**निष्कर्ष**–हमें अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की कड़ियों को जोड़ते हुए उसकी पुनः शाखाएं-प्रशाखाएं विस्तारित करनी है और उनमें जो कुछ छूट गया है उसे व्यवस्थित करना है। हम समृद्ध विद्वानों और शोधकर्ता मनीषियों के वंशज हैं, इसलिए हमारा दायित्व बढ़ जाता है। हमें अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से प्रेरणा लेते हुए अपनी आने वाली पीढ़ियों में सांस्कृतिक गौरव बोध का विस्तार करना है। हमें अपनी न्यूनताओं को दूर करना होगा। हम नए ज्ञान विज्ञान से खुद को अभिसिंचित करते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा को विकासोन्मुख करें। हम एक विद्यार्थी और एक शिक्षक के रूप में तक्षशिला और नालंदा के अतीत गौरव को पुनः स्थापित करें तभी भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रदेय हम अपनी आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचा पाएंगे।

## संदर्भ


1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. प्रथम संस्करण (1981), ग्रंथावली भाग-3 से, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 33
2. उपरोक्त पृ. 34
3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 36
4. दास, श्यामसुंदर. संवत् (2045), 16वाँ संस्करण, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, पृ. 9
5. उपरोक्त, पृ. 31
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, संस्करण (1995), कबीर, राजकमल प्रकाशन, पृ. 128
7. तुलसीदास गोस्वामी. संस्करण संवत् (2068), रामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 18
8. त्रिपाठी, विश्वनाथ. संस्करण (2013), हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरिएंट ब्लैक स्वां प्राइवेट लिमिटेड, पृ. 81